दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

मु.वि.या. सं. 51/2005

निर्णय की तारीखः 28.08.2009

कर्मयोगी शेल्टर्स प्राइवेट लिमिटेड .....याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री सुधीर नंदराजोग, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री राकेश मिश्रा।

बनाम

बनारसी कृष्ण समिति और अन्य .....प्रत्यर्थीगण

द्वारा: श्री एन.एन. अग्रवाल, के साथ श्री कपिल गुप्ता और श्री रोहित गांधी, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता।

कोरमः

माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सहाय एंडलॉ

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? हाँ

2. रिपोर्टर के पास भेजा जाना है या नहीं? हाँ

3. क्या निर्णय की सूचना डाइजेस्ट में दी जानी चाहिए? हाँ

<u>राजीव सहाय एंडलॉ,</u> न्या.

1. माध्यस्थम् अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत इस याचिका को 12 मई, 2004 के माध्यस्थम् अधिनिर्णय के संबंध में प्राथमिकता दी गई है। यह याचिका सबसे पहले 3 फरवरी, 2005 को इस न्यायालय में दायर की गई थी। याचिका के पैरा 25 में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को नवंबर, 2004 के अंतिम सप्ताह में अधिनिर्णय के बारे में सूचित किया और याचिकाकर्ता से "न्यायालय फ़ीस" की आवश्यक राशि मांगी गई; याचिकाकर्ता ने 29 नवंबर, 2004 को आवश्यक "न्यायालय फ़ीस" जमा किया और विद्वान माध्यस्थम् द्वारा याचिकाकर्ता को 15 दिसंबर, 2004 को अधिनिर्णय दिया गया था। मु.वि.या. सबसे पहले 7 फरवरी, 2005 को इस न्यायालय के समक्ष आया जब प्रत्यर्थी के अधिवक्ता भी उपस्थित हुए और तर्क दिया कि अधिनिर्णय की प्रति याचिकाकर्ता को मई, 2004 में ही प्रदान की गई थी और इस प्रकार याचिका कालातीत हो गई थी। यह न्यायालय, सही तारीख का पता लगाने के लिए कब अधिनिर्णय की प्रति वास्तव में याचिकाकर्ता को दी गई थी, माध्यस्थम् अभिलेख की मांग की। माध्यस्थम् अभिलेख प्राप्त हो गया है। यह आदेश इस सवाल का निपटान करेगा कि याचिका निर्धारित समय के भीतर दायर की गई या नहीं। अधिवक्ताओं को सुना गया है।

2. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 12 मई, 2004 को अधिनिर्णय होने पर दोनों पक्षकार 13 मई, 2004 को माध्यस्थम् के समक्ष पेश हुए थे। इस न्यायालय को माध्यस्थम् अभिलेख में अधिनिर्णय की प्रति पर पृष्ठांकन प्राप्त हुआ, इस संबंध में दोनों पक्षों द्वारा अधिनिर्णय की प्रति का प्राप्त होना दिखाया गया है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि प्रत्यर्थी की ओर से पुष्टि की गई है और अधिवक्ता पी.बी. सुरेश, के लिए भी "स्वीकार पत्र" की पुष्टि की गई है जो माध्यस्थम् के समक्ष याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। अधिवक्ता ने याचिका के साथ याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय में दायर किए गए अधिनिर्णय की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। स्टाम्प पेपर के बाद पहले पृष्ठ पर भी "स्वीकार पत्र" के ऊपरी बाएँ कोने पर "13 मई, 2004" की तारीख अंकित है।

3. यह आग्रह किया जाता है कि उपरोक्त से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि याचिकाकर्ता को अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति प्राप्त हुई और जिसके आधार पर यह याचिका 13 मई, 2004 को दायर की गई है। इस प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि 3 फरवरी, 2005 को दायर याचिका कालातीत थी और करने योग्य थी।

4. दिनांक 16 मई, 2005 के आदेश के अनुसरण में इस न्यायालय में याचिकाकर्ता द्वारा दायर शपथ पत्र पर भी ध्यान आकर्षित किया जाता है। उक्त

शपथ पत्र में कहा गया है कि माध्यस्थम् के समक्ष सुनवाई/दलीलें 31 दिसंबर, 2003 को समाप्त हुईं और निर्णय/अधिनिर्णय सुरक्षित रखा गया था; कि याचिकाकर्ता के निदेशक ने नियमित रूप से लगभग एक महीने तक अपने अधिवक्ता से अधिनिर्णय के बारे में पूछताछ की; इस दौरान अधिनिर्णय नहीं किया गया था; इसके बाद याचिकाकर्ता के उक्त निदेशक ने अधिवक्ता से अधिनिर्णय के बारे में पूछताछ करना बंद कर दिया और इस धारणा के तहत कि अधिनिर्णय याचिकाकर्ता को सीधे डाक द्वारा भेजा जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 31 (5) के तहत प्रदान किया गया है; कि 28 अक्टूबर, 2004 को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उक्त निदेशक को टेलीफोन पर सूचित किया कि प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता को अधिनिर्णय के संदर्भ में धन की पेशकश की थी और इस बारे में निर्देश मांगे कि इसे स्वीकार करना है या नहीं। उक्त शपथ पत्र में आगे यह भी कहा गया है कि इस तारीख को याचिकाकर्ता के निदेशक को पता चला कि अधिनिर्णय दिया गया था; फिर उन्होंने अधिवक्ता से उन्हें एक प्रति प्रदान करने के लिए कहा ताकि वह इसकी स्वीकार्यता पर एक राय बना सकें। याचिकाकर्ता के निदेशक द्वारा शपथ पत्र में आगे कहा गया है कि नवंबर, 2004 में याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी के अधिवक्ता से भी एक पत्र प्राप्त हुआ था; उसके बाद से याचिकाकर्ता को अधिनिर्णय की कोई प्रति नहीं मिली थी।

5. इसके बाद उपरोक्त शपथ पत्र के पैरा 8 में यह उल्लेख किया गया है "जैसा कि अभिसाक्षी द्वारा अनुरोध किया गया था, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को “बिना स्टाम्प के” अधिनिर्णय की एक प्रति प्रदान की। यह अधिनिर्णय सादे कागज पर था। अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को यह भी सूचित किया कि अधिनिर्णय का अभी तक सुलेखन नहीं हुआ है और याचिकाकर्ता को अधिनिर्णय प्राप्त करने और इसे निष्पादन योग्य बनाने के लिए रु.4100/- के स्टाम्प-पत्र देने होंगे।

6. शपथ पत्र में आगे कहा गया है कि इसके बाद याचिकाकर्ता ने 29 नवंबर, 2004 को स्टाम्प-पत्र खरीदा और इसे 15 दिसंबर, 2005 को माध्यस्थम् को भेजा और उसी तारीख को माध्यस्थम् ने स्टाम्प-पत्र पर हस्ताक्षर किए और याचिकाकर्ता को वापस कर दिया।

7. शपथ पत्र में आगे कहा गया है कि माध्यस्थम् अभिलेख के निरीक्षण पर इस न्यायालय में याचिकाकर्ता की तरफ से उपस्थित अधिवक्ता श्री टी.के. प्रधान को पता चला था कि माध्यस्थम् द्वारा याचिकाकर्ता को कभी भी अधिनिर्णय नहीं भेजा गया था जैसा कि अधिनियम की धारा 31 (5) के तहत प्रदान किया गया है। शपथ पत्र में यह भी तर्क दिया गया है कि बिना स्टाम्प लगा हुआ अधिनिर्णय कानून की नजर में कोई अधिनिर्णय नहीं है क्योंकि माध्यस्थम्

अधिनिर्णय देने के बाद पदकार्य-निवृत होता है और अधिनिर्णय पर स्टाम्प भी नहीं लगा सकता है; इस प्रकार अधिनिर्णय केवल स्टाम्प लगाने पर ही पूरा होता है। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि अधिनिर्णय 15 दिसंबर, 2004 को ही पारित किया गया था और याचिका समय के भीतर है।

8. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने शपथ पत्र के पैरा 8 (पूर्वोक्त) पर बहुत जोर दिया है। यह आग्रह किया जाता है कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर इसे अस्पष्ट छोड़ दिया है कि अधिवक्ता ने माध्यस्थम् से प्राप्त बिना स्टाम्प वाला अधिनिर्णय याचिकाकर्ता को कब प्रदान किया। आगे यह तर्क दिया जाता है कि याचिकाकर्ता ने मु.वि.या. में उक्त तथ्यों को छुपाया और यह धारणा व्यक्त करने की कोशिश की कि उसे 15 दिसंबर, 2004 को ही अधिनिर्णय प्राप्त हुआ था।

9. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि मामला अब अनिर्णीत विषय नहीं है। ***एम.एम. जवाहर मैरिकन बनाम इंजीनियर्स इंडिया लिमिटेड*** 2009 (4) ए.डी., दिल्ली 161 पर विश्वास किया गया है जहाँ इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 34 के तहत याचिका दायर करने की सीमा अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति की प्राप्ति से शुरू होती है और इसे अधिनिर्णय पर स्टाम्प लगाने की तारीख या अधिनिर्णय की स्टाम्प लगी प्रति देने की तारीख से नहीं।

10. प्रत्यर्थी ने ***नीलकंठ शिद्रमप्पा निंगशेट्टी बनाम काशीनाथ सोमन्ना निंगशेट्टी*** ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 666 पर भी भरोसा किया है जहां माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 14 (2) के तहत नोटिस के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पक्षकारों के अधिवक्ता को यह सुचना कि अधिनिर्णय दायर किया गया है, संबंधित पक्षकारों को नोटिस देने के संबंध में उक्त प्रावधान की आवश्यकताओं का उचित अनुपालन है। ***भारत संघ बनाम विश्व मित्तर बजाज एंड संस*** एम.ए.एन.यु./डी.ई/7479/2007 का भी संदर्भ दिया गया है।

11. इसके विपरीत, याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि अधिनियम की धारा 31 (5) और धारा 34 (3) की आवश्यकता "पक्षकार" को अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति देने की है। अधिनियम की धारा 2 (एच) में "पक्षकार" की परिभाषा पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसका अर्थ है केवल माध्यस्थम् करार का एक पक्षकार। यह तर्क दिया जाता है कि इस प्रकार परिदान माध्यस्थम् करार के पक्षकार को व्यक्तिगत रूप से होना चाहिए और इस मामले में उस पक्षकार का अधिवक्ता नहीं हो सकता है। संचार सेवा प्रदान करने वाली धारा 3 पर भी ध्यान आकर्षित किया गया है और यह आग्रह किया गया है कि यह केवल पक्षकार के लिए है न कि उसके अधिवक्ता के लिए। अंत में यह आग्रह किया जाता है कि चूंकि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 धारा 34 (3) पर

लागू नहीं होता है, इसलिए न्यायालय को परिसीमा को प्रारंभ करने के संबंध में सांविधिक प्रावधान की कठोर व्याख्या करनी चाहिए क्योंकि इसमें कोई माफी नहीं हो सकती है। ***राष्ट्रीय परियोजना निर्माण निगम लिमिटेड बनाम बुंदेला बंधु निर्माण कंपनी*** ए.आई.आर. 2007 दिल्ली 202 डी.बी. पैरा 16 पर उक्त प्रस्ताव के समर्थन में विश्वास किया गया है; इसी निर्णय के पैरा 12, 14 और 15 में भी यह तर्क दिया गया है कि अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति का परिदान उस व्यक्ति को होनी चाहिए जिसे निर्णय लेना है कि अधिनिर्णय स्वीकार करना है या उसके संबंध में धारा 34 के तहत याचिका दायर करनी है। यह तर्क दिया जाता है कि उक्त व्यक्ति केवल याचिकाकर्ता या उसका निदेशक हो सकता है और माध्यस्थम् कार्यवाही में संलग्न के लिए अधिवक्ता नहीं हो सकता है और वो ऐसा निर्णय नहीं ले सकते।

12. यह भी आग्रह किया जाता है कि जबकि सि.प्र.स. में, आदेश 3 में अधिवक्ताओं/वकीलों द्वारा प्रतिनिधित्व और उन पर नोटिस की तामील के लिए विशिष्ट प्रावधान किया गया है, लेकिन 1996 के अधिनियम में इसे जानबूझकर हटा दिया गया है। इस प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति का प्रतिदान समझौते के पक्षकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं हो सकती है।

13. ***भारत संघ बनाम टेको*** त्रिची ***इंजीनियर और ठेकेदार*** 2005 4 एस.सी.सी. 239 पर भी भरोसा किया गया गया है, जहां रेलवे के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि केवल तभी माध्यस्थम् पंचाट उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसे कार्यवाही की जानकारी हो और जो माध्यस्थम् पंचाट को समझने और आँकने के लिए सबसे अच्छा व्यक्ति हो और वो धारा 33 या धारा 34 के तहत आवेदन दायर करने के मामले में निर्णय ले सकें कि, क्या परिसीमा की शुरुआत हो ।

14. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर में तर्क दिया है कि याचिका या शपथ पत्र में कहीं भी याचिकाकर्ता ने 13 मई, 2004 को अधिनिर्णय प्राप्त करने वाले अधिवक्ता के अधिकार से इनकार नहीं किया है; यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने माध्यस्थम् से अधिनिर्णय की कोई दूसरी प्रति नहीं ली और वास्तव में 13 मई, 2004 को अधिवक्ता द्वारा प्राप्त प्रति के आधार पर कार्य किया गया है। यह तर्क दिया कि उक्त याचिकाओं की अनुपस्थिति में, यह माना जाता है कि अधिनिर्णय 13 मई, 2004 को याचिकाकर्ता को दिया गया था और याचिका कालातीत है।

15. याचिकाकर्ता की पूरी याचिका को इस तरह संरचित किया गया है जैसे कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा माध्यस्थम् से 13 मई, 2004 को

अधिनिर्णय लिया गया था और यह सुझाव दिया जाता है कि उक्त अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को इसके बारे में सूचित नहीं किया था। शपथ पत्र के साथ-साथ सुनवाई के दौरान भी एक धारणा बनाने की कोशिश की गई है जैसे कि माध्यस्थम् के समक्ष और इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता का अधिवक्ता अलग-अलग है। यही धारणा है जिसने न्यायालय को सुनवाई के दौरान यह पूछताछ करने के लिए प्रेरित किया कि क्या याचिकाकर्ता ने माध्यस्थम् के समक्ष अधिवक्ता के खिलाफ कोई कार्रवाई की थी। फिर भी, न में जवाब देते हुए, उक्त धारणा जारी रही।

16. हालाँकि, शपथ पत्र को बारीकी से देखने पर यह पाया गया है कि याचिकाकर्ता ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि यह अधिवक्ता ही है जिसने 13 मई, 2004 को माध्यस्थम् से अधिनिर्णय प्राप्त किया था और न ही यह कहा कि उस तारीख को अधिनिर्णय किसने प्राप्त किया था। उपरोक्त स्वीकार पत्र "पी.बी. सुरेश, अधिवक्ता" हस्ताक्षरित है। यह बहुत संभव है कि याचिकाकर्ता का एक कर्मचारी/प्रतिनिधि ही हो जिसने इस पर हस्ताक्षर किए हों। इस पहलू पर चुप रहने के याचिकाकर्ता के आचरण से, प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए, यानी कि अगर सच्चाई सामने आई होती, तो इससे याचिकाकर्ता को नुकसान होता।

17. यह धारणा देने की कोशिश की गई कि अधिवक्ता ने इस न्यायालय में प्राप्त माध्यस्थम् अभिलेख के निरीक्षण पर याचिकाकर्ता को या इन कार्यवाहियों में अधिवक्ता को अधिनिर्णय के बारे में सूचित नहीं किया था, जिसमें पाया गया था कि माध्यस्थम् द्वारा पक्षकारों को अधिनिर्णय नहीं भेजा गया था, (जैसा कि शपथ पत्र के पैरा 10 में कहा गया है) भी गलत पाया गया है। सुनवाई के दौरान माध्यस्थम् अभिलेख के अवलोकन से पता चला कि वर्तमान याचिका दायर करने वाले अधिवक्ता का वकालतनामा भी माध्यस्थम् अभिलेख में मौजूद है। श्री पी.बी. सुरेश के साथ कई माध्यस्थम् सुनवाई में उनकी उपस्थिति भी दर्ज की गई है और उन्होंने माध्यस्थम् के समक्ष अपने हस्ताक्षर से धारा 17 के तहत आवेदन भी दायर किया है। वरिष्ठ अधिवक्ता की ओर इशारा किए जाने पर, यह स्थिति विवादित नहीं थी।

18. इस प्रकार अधिवक्ता का वह बहाना जिस पर याचिकाकर्ता निर्भर था, याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध नहीं है। इन कार्यवाहियों में याचिकाकर्ता का उसी अधिवक्ताओं के साथ रहने का तथ्य जो मध्यस्थ के समक्ष याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता उक्त अधिवक्ता से किसी भी तरह से व्यथित नहीं था और उसे 13 मई, 2004 को ही अधिनिर्णय की जानकारी हो गई थी और उसकी प्रति प्राप्त हुई थी। याचिकाकर्ता तथ्यों को गलत

तरीके से प्रस्तुत करने और न्यायालय को गलत धारणा देने का दोषी है। याचिकाकर्ता ने बल्कि काल-बाधा से बाहर निकलने के लिए अधिवक्ता के नाम का उपयोग करने की कोशिश की है।

19. हालाँकि याचिकाकर्ता का उपरोक्त आचरण इस याचिका को कालातीत मानकर खारिज करने के लिए पर्याप्त है, लेकिन उठाई गई कानूनी दलीलों पर भी विचार किया जा सकता है।

20. विचार किए जाने वाली पहली प्रस्तुति यह है कि क्या धारा 31 (5) और धारा 34 (3) केवल माध्यस्थम् करार के पक्षकार को व्यक्तिगत रूप से देने पर जोर देती है या यह उक्त पक्षकार के प्रतिनिधि को भी दिया जा सकता है। मेरे विचार में, "पक्षकार" में पक्षकार का अभिकर्ता शामिल होगा। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता एक न्यायिक व्यक्ति है। इसका प्रतिनिधित्व अनिवार्य रूप से स्वाभाविक व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए। माध्यस्थम् अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि माध्यस्थम् के समक्ष मध्यस्थता के मामले में याचिकाकर्ता, जो इस न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश हैं, का प्रतिनिधित्व केवल इनके अधिवक्ताओं द्वारा किया गया था और याचिकाकर्ता के अन्य प्रतिनिधि माध्यस्थम् कार्यवाही में केवल अपने साक्ष्य दर्ज करने के समय उपस्थित हुए थे। इस प्रकार, जहाँ तक माध्यस्थम् का संबंध है, याचिकाकर्ता का

प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता याचिकाकर्ता के अभिकर्ता थे और याचिकाकर्ता का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व करने के हकदार थे। पक्षकार के ऐसे अभिकर्ता को माध्यस्थम् पंचाट का परिदान स्वयं पक्षकार को देने के समान होगा।

21. माध्यस्थम् अभिलेख पर याचिकाकर्ता की ओर से वकालतनामा यह भी दर्शाते हैं कि अधिवक्ताओं को याचिकाकर्ता द्वारा पूरी तरह से अधिकृत किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता की ओर से नोटिस स्वीकार करना भी शामिल है। चूँकि वकालतनामा की भाषा अदालतों में मुकदमेबाजी के लिए तैयार की गई है न कि मध्यस्थता के लिए, इसलिए वकालतनामा में" अधिनिर्णय" शब्द का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं मिलता है। हालाँकि, यह मायने नहीं रखता है। एक बार जब अधिवक्ता को अपने मुवक्किल की ओर से कार्य करने और दस्तावेजों को दाखिल करने और वापस लेने और मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत किया जाता है, तो पक्षकार के ऐसे अधिवक्ता को अधिनिर्णय देना पक्षकार को देने के समान है।

22. मैंने याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता का ध्यान अधिनियम के कई अन्य प्रावधानों की ओर भी आकर्षित किया था, जिसमें पक्षकार को कार्रवाई करने की आवश्यकता थी। उदाहरण के लिए, धारा 11 (6) में पक्षकार द्वारा मुख्य न्यायाधीश को आवेदन दायर करने की आवश्यकता है। वरिष्ठ अधिवक्ता को यह

बताया गया कि यदि उनके तर्क को स्वीकार किया जाता है, तो इसका मतलब यह होगा कि धारा 11 (6) के तहत आवेदन स्वयं पक्षकार द्वारा दायर किया जाएगा, किसी अधिवक्ता द्वारा नहीं। वरिष्ठ अधिवक्ता ने जवाब दिया कि अधिवक्ता, यदि अधिकृत है तो वह आवेदन दायर करने के लिए सक्षम है। मेरे विचार में, यही सिद्धांत माध्यस्थम् पंचाट के परिदान के मामले में भी लागू होगा। "पक्षकार" द्वारा स्पष्ट रूप से या निहित रूप से अधिकृत किसी भी व्यक्ति को परिदान पक्षकार को परिदान है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि माध्यस्थम् डाक या कूरियर द्वारा अधिनिर्णय भेजकर भी पक्षकार को व्यक्तिगत रूप से परिदान सुनिश्चित नहीं कर सकता है और ऐसे मामलों में उन व्यक्तियों को परिदान सुनिश्चित नहीं कर सकता है जो सामान्य रूप से पक्षकार की ओर से ऐसा डाक प्राप्त करते हैं या पक्षकार के पते पर परिदान प्राप्त करते हैं।

23. वरिष्ठ अधिवक्ता ने सुझाव दिया कि माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा नियुक्त अधिवक्ता का अधिकार कार्यवाही समाप्त होने पर समाप्त हो जाएगा। हालाँकि उक्त तर्क भी मेरे साथ प्रबल नहीं है। माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष कार्यवाही अधिनियम की धारा 32 के तहत केवल अंतिम माध्यस्थम् पंचाट द्वारा समाप्त होती है और अधिनियम की धारा 33 के अधीन होती है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि माध्यस्थम् अधिकरण के

समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा नियुक्त अधिवक्ता का अधिकार दलीलों को संबोधित करने पर समाप्त हो गया और माध्यस्थम् पंचाट बनने तक जारी नहीं रहा।

24. इसका एक और कारण भी है। 13 मई, 2004 को अधिनिर्णय की प्रति प्राप्त करने के लिए उसी दिन माध्यस्थम् के समक्ष उपस्थित याचिकाकर्ता के प्रतिनिधियों के साथ-साथ प्रत्यर्थी के तथ्य से, ऐसा प्रतीत होता है कि माध्यस्थम् द्वारा 12 मई, 2004 को अधिनिर्णय के प्रकाशन को पक्षकारों को सूचित किया गया था। यद्यपि इस आशय का अभिलेख पर माध्यस्थम् का कोई पत्र नहीं है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि माध्यस्थम् ने उन पक्षों के अधिवक्ताओं को टेलीफोन पर सूचित किया होगा जो उनके संबंधित पक्षकारों की ओर से माध्यस्थम् ने अधिनिर्णय के बारे में और उनसे 13 मई, 2004 को अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति लेने के लिए कहा था। यदि अधिवक्ता का अधिकार समाप्त हो गया होता, तो अधिवक्ता ने अधिनिर्णय नहीं लिया होता।

25. अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 30 के तहत अधिवक्ता अन्य बातों के साथ-साथ किसी भी अधिकरण या साक्ष्य लेने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत व्यक्ति के समक्ष वकालत करने का अधिकार रखता है। माध्यस्थम् कानूनी रूप से साक्ष्य लेने के लिए अधिकृत है (धारा 27)। वकालत करने के अधिकार में अभिवचन और कार्य दोनों शामिल हैं (***अश्विनी कुमार घोष बनाम***

अरबिंद बोस ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 369)। उच्चतम न्यायालय ने ***जमीलाबेन अब्दुल कादर बनाम शंकरलाल गुलाबचंद*** ए.आई.आर 1975 एस.सी. 2202 में अभिनिर्धारित किया कि अधिवक्ता को वकालत करने का अधिकार, अर्थात कार्य करने के अधिकार में, मुवक्किल की ओर से वाद का निपटान/समझौता करने का अधिकार भी शामिल है। अधिवक्ता के ऐसे अधिकार के बवजूद भी, यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिवक्ता, हालांकि मुवक्किल की ओर से निपटान/समझौता करने के लिए अधिकृत है, लेकिन उसकी ओर से अधिनिर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है। वास्तव में ***एस. महाराज बख्श सिंह बनाम चरण कौर*** में ए.आई.आर. 1987 पंजाब और हरियाणा 212 (डी.बी.) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि समझा जाता है कि अधिवक्ता अपने मुवक्किल को अपने व्यक्तित्व में ढाल लेता है। इस संदर्भ में, सि.प्र.स. का आदेश 3 केवल यह संहिताबद्ध करता है कि अधिवक्ता, वकालत करने के अपने अधिकार के आधार पर, क्या करने का हकदार है। ऐसा ही एक पहलू आदेशिका की तामील करना है, जैसा कि आदेश 3 में भी प्रदान किया गया है। याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि 1996 के अधिनियम में सि.प्र.स. के आदेश 3 को जानबूझकर छोड़ दिया गया है, सही नहीं लगता है। 1996 के अधिनियम में कुछ भी अधिवक्ताओं को माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष या न्यायालय में वकालत करने से प्रतिबंधित नहीं करता है या सि.प्र.स. के आवेदन को प्रतिबंधित नहीं करता है। धारा 19 (1) में केवल यह

प्रावधान है कि माध्यस्थम् अधिकरण सि.प्र.स. से बाध्य नहीं होगा। अन्यथा, सी.पी.सी. में निर्धारित प्रक्रिया, वह प्रक्रिया है जिसके साथ पक्षकार, उनके अधिवक्ता और यहां तक कि कानून में निपुण माध्यस्थम् परिचित हैं, व्यवहार में हैं, माध्यस्थम् में भी उनका पालन किया जाता है, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति न हो। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले में भी माध्यस्थम् के समक्ष इसी प्रक्रिया का पालन किया गया है और यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने माध्यस्थम् को सूचित किया कि उसके अधिवक्ता को दिया गया अधिकार उससे कम नहीं था जिसे आम तौर पर अधिवक्ताओं का माना जाता है। इस प्रकार मैं पाता हूँ कि याचिकाकर्ता का अधिवक्ता माध्यस्थम् से अधिनिर्णय लेने के लिए अधिकृत था।

26. रेलवे या सरकारी विभाग के संबंध में कानून, जैसा कि ***बुंदेला बंधु कंस्ट्रक्शन कंपनी और टेको त्रिची इंजीनियर और ठेकेदार,*** (पूर्वोक्त) में निर्धारित किया गया है, कि प्राइवेट लिमिटेड कंपनी पर याचिकाकर्ता के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है। ऐसी कोई दलील नहीं है कि याचिकाकर्ता किसी भी तरह से तुलनीय है। इसी तरह, अधिवक्ताओं की उसी टीम के रहने से इस मामले के तथ्यों से यह पता चलता है कि इस याचिका को दायर करने का निर्णय उन्हीं अधिवक्ताओं-मुवक्किलों द्वारा लिया जाना था और लिया गया और जो तर्क दिया

गया है वह टिक नहीं पाता है। हालांकि ***एम.एम. जवाहर मैरिकन*** (पूर्वोक्त) की खण्ड पीठ ने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि धारा 34 (3) के तहत समय अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति के परिदान तक है, भले ही बिना स्टाम्प के और स्टाम्प वाले अधिनिर्णय के परिदान से नहीं, यह ध्यान देना दिलचस्प है कि वर्तमान मामले में स्टाम्प-पत्र केवल मध्यस्थ से हस्ताक्षरित किए गए थे और यह भी मामला नहीं है कि उस दिन मध्यस्थ ने याचिकाकर्ता को अधिनिर्णय की कोई अन्य प्रति परिदान की थी।

27. इस मामले का एक और पहलू भी है। यह अभिनिर्धारित करना कि अधिनिर्णय व्यक्तिगत रूप से पक्षकार को परिदान किया जाना है और पक्षकार का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को नहीं दिया जा सकता है, माध्यस्थम् कार्यवाही में अनावश्यक देरी/बाधा पैदा करेगा। वास्तव में मध्यस्थ द्वारा पक्षकर को डाक द्वारा अधिनिर्णय भेजने पर जोर देने की तुलना में व्यक्तिगत रूप से अधिवक्ता को देना अधिक सुरक्षित है। इससे अधिनिर्णय का परिदान डाक की अनियमितताओं पर निर्भर हो जायेगा। अन्यथा, अधिवक्ता पक्षकार का एक जिम्मेदार अभिकर्ता होता है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि अधिवक्ता पर याचिकाकर्ता को अधिनिर्णय नहीं देने का कोई आरोप नहीं है। यदि अधिवक्ता ऐसी

किसी कार्रवाई में शामिल होता, तो याचिकाकर्ता का ऐसे अधिवक्ता पर से विश्वास उठ जाता और वह इन कार्यवाही में अधिवक्ता के साथ नहीं रहता।

28. इसलिए मेरा मानना है कि अधिनिर्णय की हस्ताक्षरित प्रति याचिकाकर्ता को धारा 31 (5) और धारा 34 (3) के अनुसार 13 मई, 2004 को दी गई थी। 3 फरवरी, 2005 को दायर याचिका कालातीत है। वह खारिज कर दिया जाता है। याचिकाकर्ता पर इन कार्यवाहियों की जुर्माने का रु.35,000/- का भी बोझ है।

राजीव सहाय एंडलॉ,

न्यायमूर्ति

20 जुलाई, 2009

'एम/पीपी'

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकदमेबाज के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*